मध्यप्रदेशमें जैनाचार्योंका विहार

डा० विद्याधर जोहरापुरकर, जबलपुर

मध्यप्रदेशमें जैनधर्म

वर्तमान मध्यप्रदेश नवम्बर १९५६ में अस्तित्व में आया और इसमें ब्रिटिशयुगके मध्यप्रान्त व बरार क्षेत्र के महाकोशल एवं छतीसगढ़-क्षेत्र, विन्ध्य-क्षेत्रके छत्तीस राज्य, भोपाल राज्य तथा मालव और ग्वालियर क्षेत्रके अनेक राज्य समाहित हुये हैं। यह क्षेत्रफलकी दृष्टिसे भारतका सबसे बड़ा राज्य है और वस्तुतः ही भारतका मध्य हृदय स्थल है। भारतीय राजनीति और सांस्कृतिक इतिहासमें इस क्षेत्रका मौलिक तथा अमूल्य योगदान है। इस क्षेत्रके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण भागमें जैनधर्मके अनुयायी पाये जाते हैं। इससे इस क्षेत्रके जैन संस्कृतिसे प्रभावित होनेका अनुमान लगाया जाता है। यह अनुमान तब पुष्ट हो जाता है जब हम यह देखते हैं कि इसके मालव, विदिशा, सोनागिर, दशपुर, ग्वालियर, पपौरा, अहार, खजुराहो, छतरपुर, दमोह, आदि क्षेत्रोंमें अनेक पुरातात्त्विक महत्त्वके जैन अवशेष मिलते हैं जिनका अनेक विद्वानोंने अधिकृत अध्ययन किया है। इस क्षेत्रमें जैनधर्मके प्रचार-प्रसार और प्रभावके कार्यमें अनेक श्रेष्ठियों एवं राजाओंके अतिरिक्त अगणित जैनाचार्योंने भी योगदान किया है। इस योगदानका स्फुट विवरण ही अनेक स्थलों पर मिलता है। इस योगदानके महत्त्वको दृष्टिमें रखते हुये मैं इस लेखमें इन क्षेत्रोंमें ५०० ई० पू० से उन्नीसवीं सदीके बीचके चौबीस वर्षोंमें विचरण करने वाले या विकास करने वाले कुछ आचार्योंकी विवरणिका दे रहा हूँ जिससे भावी शोधार्थी इस क्षेत्रमें काम करनेके लिये प्रेरणा प्राप्त करें और मध्यप्रदेशमें जैन संस्कृतिके विकास मूल्यांकित करें। अपनी सीमाको देखते हुये मैंने यहाँ कुछ प्रमुख क्षेत्रोंका विवरण ही दिया है, अन्य क्षेत्रोंके विषयमें सामग्री एकत्रकी जा रही है।

महावीर-निर्वाणके एक हजार वर्ष

भगवान महावीरके निर्वाणके बाद प्रथम दो शताब्दियोंमें मध्यप्रदेशमें जैन आचार्योंके विहारका कोई स्पष्ट वर्णन प्राप्त नहीं होता। तदनन्तर आचार्य भद्रबाहुने उज्जयिनीमें विहार किया, वहाँ राजा चन्द्रगुप्त ने उन सभीका सम्मान किया और बादमें उनके संघने दक्षिणमें विहार किया। ऐसा वर्णन हरिषेणाचार्यके बृहत्कथाकोशमें[1] उपलब्ध है।

आचार्य भद्रबाहुके प्रशिष्य आचार्य सुहस्तिके उज्जयिनीमें विहारका और वहाँके श्रेष्ठी अवन्ति सुकुमार द्वारा उनसे दीक्षाग्रहणका वृत्तान्त राजशेखर सूरिके प्रबन्धकोशमें[2] मिलता है। आचार्य कालकके उज्जयिनीमें विहारका और वहाँ अत्याचारी राजा गर्दभिल्लके विनाशका वृत्तान्त प्रभाचन्द्राचार्यके प्रभावक-चरित[3] में तथा अन्यत्र भी प्राप्त होता है। इस ग्रन्थके अनुसार आचार्य व्रजका जन्म भी अवन्ती प्रदेशमें हुआ था तथा उन्होंने उज्जयिनीमें आचार्य भद्रगुप्तके दशपूर्व ग्रंथोंका अध्ययन किया था। इस बातका भी

१. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० १ प्रस्तावना, पृ० ५७
२. प्रबन्धकोश (फोर्बस सभा संस्करण), पृ० ३८
३. प्रभावकचरित (निर्णयसागर संस्करण), पृ० ३८, पृ०८, पृ० ११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख पाया जाता है कि आचार्य वज्रके शिष्य आचार्य रक्षितका जन्म दशपुर (मंदसौर) में हुआ था तथा विद्याध्ययन उज्जयिनीमें हुआ था। आचार्य समंतभद्रने भी मालवा और विदिशा क्षेत्रमें विहार किया था, ऐसा वर्णन श्रवणबेलगोलके मल्लिषेणप्रशस्ति[1] नामक शिलालेख में है। आचार्य सिद्धसेनके भी उज्जयिनीमें विहार, राजा विक्रमादित्य द्वारा उनके सम्मान और द्वात्रिंशिका रचनाकी कथाएँ प्रभावकचरित्र, प्रबंधकोश आदिमें प्राप्त हैं।

विदिशाके निकट उदयगिरिकी एक पार्श्वनाथ मूर्तिकी प्रतिष्ठापना आचार्य भद्रकी परम्पराके आचार्य गोशर्माके शिष्य शंकर मुनि ने सन् ४२६ में की थी, ऐसा वहाँके शिलालेख[2] से ज्ञात होता है। विदिशासे ही प्राप्त एक अन्य जिन मूर्तिकी प्रतिष्ठापना रामगुप्तके राज्यकालमें आचार्य सर्वसेन की थी, ऐसा उसके पादपीठके लेखसे ज्ञात होता है।

आठवींसे दसवीं सदी—गोपाचल (ग्वालियर) में राजा आम (नागभट) द्वारा निर्मित जिन मंदिर की प्रतिष्ठा आचार्य वप्पभट्टिने की थी, ऐसा प्रबंधकोशसे ज्ञात होता है। आमके पौत्र भोजके आमंत्रण पर वप्पभट्टिके गुरुबंधु नन्नसूरि गोपाचल पधारे थे। यह भी इस सन्दर्भमें उल्लिखित है।[3]

सन् ७८४ में आचार्य जिनसेनने हरिवंशपुराणकी रचना वर्धमानपुरमें की थी। एक मतके अनुसार उज्जयनीके निकटवर्ती नगर बदनावरका ही पुराना नाम वर्धमानपुर था। हरिषेणाचार्यके बृहत्कथाकोशकी रचना भी इसी नगरमें सन् ९३२ में हुई थी।[4]

आचार्य देवसेन ने धारा नगरमें सम्वत् ९९० में दर्शनसारकी रचना की। इसी अन्तिम गाथाओंमें स्थल-कालका उल्लेख है। खजुराहोके शान्तिनाथ मंदिरके स्थापनालेखमें जो सन् ९४४ का है राजा धंग द्वारा सम्मानित श्रेष्ठी पाहिलके साथ महाराजगुरु वासवचन्द्रका भी उल्लेख है।[5] आचार्य अभिमतगतिने सुभाषितरत्नसंदोहकी रचना सन् ९९३ में राजा मुँजके राज्यमें की थी। इनके सन् १०१६ में रचित पंच-संग्रहका रचनास्थान मसूतिकापुर (धारके पास मसोद ग्राम) उल्लिखित है।[6]

ग्यारहवीं शताब्दी—प्रभावकचरितमें बताया गया है कि आचार्य महासेनने सिन्धुराजके मंत्री पर्पटके आग्रहसे प्रद्युम्नचरित महाकाव्यकी रचना की।[7] इसीके अनुसार आचार्य वर्धमानने धारा नगरमें विहार करते हुये जिनेश्वरको सूरिपद प्रदान किया था। जिनेश्वरके शिष्य अभयदेवसूरिका जन्म भी धारामें ही कहा गया है। इनकी परम्परा खरतरगच्छके नामसे प्रसिद्ध हुई। उत्तराध्ययन टीकाकर्त्ता वादिवेताल शान्तिसूरि, महाकवि धनपालने गुरु महेन्द्रसूरि तथा नाभेयनेमिद्विसन्धान काव्यके रचयिता सूराचार्यका धारा नगरमें विहार और राजा भोज द्वारा उनके सम्मानका वृत्तान्त भी प्रभावकचरितमें मिलता है।

अपभ्रंश कथाकोश के रचयिता श्रीचन्द्रके कथनानुसार उनके गुरुके प्रगुरु आचार्य श्रुतकीर्ति राजा भोज द्वारा सम्मानित हुये थे। उन्हें गांगेय राजा द्वारा भी सम्मान प्राप्त हुआ था इससे प्रतीत होता है कि

---

१. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० १, प्रस्तावना, पृ० १४१
२. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० २, पृ० ५७
३. जैनसाहित्य और इतिहास, (प्रेमीजी), पृ० ११७
४. प्रबन्धकोष, पृ० ८४ (८–) जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १४७, २७९, ४१२
५. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० २, पृ० १९०
६. प्रभावकचरित, पृ० २६३, २६७, २१८, २२४
७. जैनग्रन्थ प्रशस्तिसंग्रह (परमानन्दजी), भा० २, पृ० ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डाहल (जबलपुर) क्षेत्रमें भी उनका विहार हुआ होगा।[1] इसी प्रकार ग्वालियरके समीप दूबकुण्डसे प्राप्त एक शिलालेख सन् १०८८ का है जिसमें वहाँके जिन मंदिरकी प्रतिष्ठापना आचार्य विजयकीर्ति द्वारा हुई बताई गई है। लेखके अनुसार विजयकीर्तिके गुरु आचार्य शान्तिषेणने राजा भोजकी सभामें सम्मान प्राप्त किया था।[2]

आचार्य प्रभाचन्द्रने राजा भोज और उनके उत्तराधिकारी जयसिंहके राज्यमें न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंकी रचना की। आचार्य नयनन्दिने राजा भोजके राज्यकालमें धारा नगरमें सन् १०४४ में अपभ्रंश काव्य सुदर्शनचरितकी रचना की। इनकी दूसरी रचना सकलविधिविधान काव्य भी भोजके ही राज्यमें पूर्ण हुई थी।[3]

सन् १०१३ में श्रीचन्द्र आचार्यने धारामें आचार्य सागरसेनसे अध्ययन कर पुराणसारकी रचना की तथा यहीं दस वर्ष बाद उत्तरपुराण टिप्पणकी रचना की। इनका पद्मपुराण टिप्पण भी भोजके ही राज्यकालमें सन् १०३० में लिखा गया।[4]

विदिशाके समीप बडोहके जिन मन्दिरके द्वार पर प्राप्त सन् १०५७ के लेखमें आचार्य उभयचन्द्र का तथा सन् १०७८ के लेखमें मंत्रवादी आचार्य देवचन्द्रका नाम उल्लिखित है।[5] इसी प्रकार श्रवण-बेलगोल के सन् ११९५ के एक शिलालेखसे गोलाचार्यका परिचय मिलता है। ये चंदेल वंशके राजकुमार तथा गोल्ल प्रदेशके स्वामी थे तथा किसी कारणसे विरक्त होकर मुनि हुये थे। इनका मूलस्थान बुन्देलखण्ड का उत्तरी क्षेत्र प्रतीत होता है। लेखमें इनके प्रशिष्यके प्रशिष्य मेघचन्द्रके समाधिमरणका वर्णन है।[6]

जबलपुरसे ४० मील दूर बहुरीबन्दमें एक भव्य शान्तिनाथ मूर्तिकी स्थापना आचार्य सुभद्रने सन् ११३० में लगभग राजा गयाकर्णके राज्यकालमें की थी, ऐसा उसके पादपीठलेखसे ज्ञात होता है।[7]

बारहवींसे चौदहवीं शताब्दी—बड़वानीके समीप चूलिगिरि पर्वत पर प्राप्त सन् ११६६ के दो लेखोंमें आचार्य रामचन्द्रका वर्णन है। इन्होंने वहाँ इन्द्रजित् केवलीका मन्दिर बनवाया था।[8] प्रबन्धकोश में आचार्य विशालकीर्ति और उनके अनेक वादोंमें विजय प्राप्त करने वाले शिष्य मदनकीर्तिके उज्जयिनीमें विहारका वर्णन प्राप्त होता है। मदनकीर्तिकी शासनचतुस्त्रिंशिकामें मालवाके तीन स्थान-धाराके नवखंड पार्श्वनाथ, मंगलपुरके अभिनन्दन और बृहत्पुर (बड़वानी) के बड़े देव (बावनगजा) का वर्णन भी है।

खजुराहोंके दो मूर्तिलेखोंमें, जिनका समय बारहवीं सदीमें अनुमानित है, भट्टारक आम्रनन्दिका नाम उल्लिखित है। यहींके एक अन्य मूर्तिलेखमें दुर्लभमन्दिर-रविचन्द्र-सर्वनन्दिकी आचार्य परम्परा भी उल्लिखित है। यहीं के सन् ११५८ के एक मूर्तिलेखमें आचार्य राजनन्दिके शिष्य भानुकीर्तिका नाम भी उल्लिखित है।[9] विशालकीर्ति और मदनकीर्तिका वर्णन धाराके समीपवर्ती नलकच्छापुर (नालछा) के महापण्डित

१. जैनशिलालेखसंग्रह, भाग २, पृ० ३४५
२. जैनसाहित्य और इतिहास, पृ० २९०, २८७
३. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भा० २, पृ० ३
४. जैनशिलालेख संग्रह, भा० १, १४२
५. जैनशिलालेख संग्रह, भा० ४, पृ० १४७
६. जैनशिलालेख संग्रह, भा० ३, पृ० १४३
७. प्रबन्धकोश, पृ० १३१
८. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३४७
९. जैनशिलालेखसंग्रह, भाग ४, पृ० ४०, ४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशाधरकी ग्रंथप्रशस्तियोंमें भी मिलता है। मदनकीर्तिने उनकी प्रशंसा की थी और विशालकीर्तिने उनसे न्यायशास्त्र पढ़ा था। आशाधरने आचार्य महावीरसे धारामें प्रमाणशास्त्र और व्याकरणशास्त्र पढ़ा था। आचार्य सागरचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रके आग्रहसे उन्होंने इष्टोपदेशटीका लिखी थी। उनके प्रशंसकोंमें मुनि उदयसेनका नाम भी उल्लिखित है।[1]

तपागच्छकी गुर्वावलियोंसे ज्ञात होता है कि नव्य कर्मग्रन्थोंके रचयिता देवेन्द्रसूरि (स्वर्गवास सन् १२७०) और उनके शिष्य विद्यानन्दका विहार उज्जयिनीमें हुआ था। विद्यानन्दके गुरुबन्धु धर्मघोषसूरिके उज्जयिनी और मण्डपदुर्ग (माण्डव)में विहारका वर्णन भी इनमें मिलता है।[2]

पावागिरि (ऊन)के सन् १२०१ के एक मूर्तिलेखमें प्रतिष्ठापक आचार्य देशनन्दिका नाम उल्लिखित है।[3] इसी प्रकार सोनागिरिके सन् १२१५ के एक मूर्तिलेखमें प्रतिष्ठापक आचार्य धर्मचन्द्रका नाम उल्लिखित है।[4]

प्रशस्तियोंके अनुसार जब आचार्य कमलभद्र मालवामें सलखणपुरमें विहार कर रहे थे, तब सन् १२३० में दामोदर कविने उनके सान्निध्यमें नेमिनाथचरितकी रचना की थी।[5] बडवानीके निकट चूलगिरि पर्वतकी एक जिनमूर्तिके सन् १३१२ में लेखमें[6] प्रतिष्ठापक आचार्य शुभकीर्तिका नाम प्राप्त होता है। धनपाल कविके बाहुबलिचरित (सन् १३९८) के अनुसार उनके गुरु आचार्य प्रभाचन्द्रने अन्य अनेक नगरोंके साथ धारा नगरमें भी विहार किया था।[7]

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी—आचार्य गुणकीर्तिके उपदेशसे ग्वालियरमें कवि पद्मनाभ कायस्थने सन् १४०५ के करीब यशोधरचरितकी रचना की थी।[8] यहीं आचार्य यशःकीर्तिने सन् १४३० में भविष्यदत्त कथा और सुकुमारचरितकी प्रतियाँ लिखवाई थीं। यहीं पर उन्होंने स्वयंभूविरचित अरिष्टनेमिचरितका जीर्णोद्धार भी किया था। ग्वालियरमें ही आचार्य गुणभद्रने सन् १४५० के करीब अनन्तव्रतकथा आदि पन्द्रह कथाओंकी रचना की थी।[9] इसी प्रकार आचार्य जिनचन्द्र द्वारा सन् १४५७ में और आचार्य सिंहकीर्ति द्वारा सन् १४७४ में ग्वालियरमें जिनमूर्तिप्रतिष्ठामहोत्सव सम्पन्न कराये गये थे।[10] आचार्य श्रुतकीर्तिने दमोहके निकट जेरहटमें सन् १४५७ में हरिवंशपुराणकी रचना पूर्ण की थी।[11]

सूरतके आचार्य देवेन्द्रकीर्तिने अन्य अनेक स्थानोंके समान अवंती (मालवा)में भी प्रतिष्ठायें करवाई थीं, ऐसा उनकी परम्पराकी पट्टावलीसे ज्ञात होता है। इसी पट्टावलीके[12] अनुसार उनके प्रशिष्य आचार्य

---

१. पट्टावली समुच्चय (दर्शनविजयजी), भा० १, पृ० ५७, ६०
२. अनेकान्त वर्ष १२, पृ० १९२
३. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० ४, पृ० ५९
४. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भा० २, पृ० १३९
५. अनेकान्त, वर्ष १२, पृ० १९२
६. अनेकान्त, वर्ष ७, पृ० ८३
७. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भा० १, पृ० ४
८. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह भा० २, पृ० ८३, ११२
९. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० ५, पृ० ८२, ८४
१०. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भा० २, पृ० १२२
११. भट्टारकसम्प्रदाय. पृ० १६९
१२. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भा० १, पृ० १७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लिभूषणने भी माण्डव और ग्वालियरमें विहार किया था। इन दोनोंका समय पन्द्रहवीं सदी की उत्तरार्द्ध है। इसी समय आचार्य कमलकीर्तिने सोनागिरिमें आचार्य शुभचन्द्रको पट्टाधीश बनाया था, ऐसा कवि रइधूके हरिवंशपुराणसे ज्ञात होता है।[1]

आचार्य सिंहनन्दि मालव प्रदेशमें कार्यरत थे। ऐसा श्रुतसागरकृत यशस्तिलकचन्द्रिकाकी अन्तिम प्रशस्तिसे ज्ञात होता है।[2] नेमिदत्तकृत श्रीपालचरित (सन् १४२८)में भी यह उल्लेख है। सोनागिरिके सन् १४४३ के एक मूर्तिलेखसे प्रतिष्ठापक आचार्य यशःसेनका परिचय मिलता है। यहींके सन् १६०६ के एक अन्य मूर्तिलेखमें आचार्य यशोनिधिका नाम उल्लिखित है।

सत्रहवीं शताब्दी—आचार्य धर्मकीर्तिने सन् १६१२ में मालवामें पद्मपुराणकी रचना की थी। इन्हींके हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिके अनुसार इसके गुरु आचार्य ललितकीर्तिका भी मालवामें विहार हुआ था। ललितकीर्तिका सन् १६१८ का एक मूर्तिलेख राणोद (शिवपुरीके समीप) तथा धर्मकीर्तिका सन् १६२४ का एक मूर्तिलेख सोनागिरिमें प्राप्त हुआ है।[3] वहाँके सन् १६१४ के एक मूर्तिलेखमें आचार्य लक्ष्मीसेन प्रतिष्ठापकके रूपमें उल्लिखित हैं। आचार्य केशवसेनने सन् १६३१ में मालवामें कर्णामृतपुराणकी रचना की थी। इनकी और आचार्य विश्वकीर्तिकी चरणपादुकायें सोनागिरिमें ही सन् १६४४ में स्थापित हुई थीं। यहींके सन् १६५१ तथा सन् १६९० के लेखोंसे आचार्य विश्वभूषण द्वारा वहाँ मन्दिर निर्माण और मूर्तिस्थापनाका पता चलाता है।[4] इसी प्रकार पपौराके सन् १६५१ के तथा अहारके सन् १६५३ के मूर्तिलेखोंसे प्रतिष्ठापक आचार्य सकलकीर्तिका उल्लेख है।[5] यह भी पता लगता है कि आचार्य सुरेन्द्र-कीर्तिने ग्वालियरमें सन् १६८३ में रविव्रत कथाकी रचना की थी।[6]

अठारहवीं सदी—सोनागिरिके विभिन्न मूर्तिलेखोंसे ज्ञात होता है कि वहाँके प्रतिष्ठापक आचार्य और उनके ज्ञात वर्ष निम्न प्रकार हैं : कुमारसेन और देवसेन, १७०३, वसुदेवकीर्ति, १७५५, महेन्द्रभूषण और देवेन्द्रकीर्ति, १७३२, देवेन्द्रभूषण, १७८० एवं महेन्द्रकीर्ति, १७९९।[7]

मानपुरा (जिला मन्दसौर)में सन् १७३० में आचार्य देवचन्द्र पट्टाधीश हुये थे, ऐसा एक पुराने पत्रसे ज्ञात होता है।[8] इसी प्रकार हालमें ही प्रकाशित एक लेखसे ज्ञात होता है कि छतरपुरमें सन् १७८३ में आचार्य जिनेन्द्रभूषणने एक मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई थी।[9]

उन्नीसवीं शताब्दी—[10] सोनागिरिके उन्नीसवी शताब्दीके लेखोंसे भी अनेक आचार्योंके नाम और मूर्तिस्थापना वर्ष निम्न प्रकार ज्ञात होते हैं : विजयकीर्ति १८११; सुरेन्द्रभूषण १८३७, राजेन्द्रभूषण

१. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० ५, पृ० ८२, ९३
२. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भा० १, पृ० ३६, ३७; जैनशिलालेखसंग्रह, भा० ५, पृ० १०१, १०३
३. जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भाग १, पृ० ५७
४. जैनशिलालेखसंग्रह, भाग, ५, पृ० १०४, १०५
५. अनेकान्त, वर्ष ३, पृ० ४४५ एवं वर्ष १०, पृ० ११५
६. भट्टारकसम्प्रदाय, पृ० ११८
७. जैनशिलालेखसंग्रह, भा० ५, पृ० १०७, १०९
८. भट्टारकसम्प्रदाय, पृ० १६५
९. जैन सन्देश, २८ अप्रैल ७७
१०. जैनशिलालेखसंग्रह, भाग ५, पृ० ११०, ११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८५६, चारुचन्द्रभूषण १८६६; शीलेन्द्रभूषण १८७३ एवं लक्ष्मीसेन १८७४। इनमेंसे सुरेद्रभूषण द्वारा सन् १८२२ में जबलपुरके समीप पनागरमें भी मूर्तिप्रतिष्ठा हुई थी, ऐसा वहाँके मूर्तिलेखोंके द्वारा ज्ञात होता है। इसी प्रकार चारुचन्द्रभूषण द्वारा सन् १८६६,१८६७ एवं १८६९ में जबलपुरके हनुमानताल मन्दिरमें मूर्ति-प्रतिष्ठायें की गई थीं। ऐसा वहाँके लेखोंसे ज्ञात होता है। पनागरके कुछ अन्य मूर्ति लेखोंसे ज्ञात होता है कि वहाँ सन् १७९७ में आचार्य नरेन्द्रभूषण द्वारा तथा सन् १८३८ में आचार्यभूषण द्वारा भी प्रतिष्ठायें हुई थीं। हनुमानताल मन्दिर, जबलपुरके कुछ मूर्तिलेखोंमें सन् १८३४,१८३९ तथा १८४० की प्रतिष्ठाओं-में आचार्य हरिचन्द्रभूषणका नाम भी उपलब्ध होता है।[1]

इस प्रकार मध्यप्रदेशके विभिन्न क्षेत्रोंके प्रकाशित इतिहास-साधनोंसे ज्ञात ९० जैन आचार्योंके उल्लेखोंकी यह संक्षिप्त सूची है। इसमें मालवा क्षेत्रके ४५, ग्वालियर क्षेत्रके ३०, छतरपुर क्षेत्रके ८ तथा जबलपुरके क्षेत्रके ७ उल्लेख हैं। प्रयोजनकी दृष्टिसे देखा जाय, तो २० उल्लेख ग्रन्थरचना सम्बन्धी, ४० मूर्तिप्रतिष्ठा सम्बन्धी एवं अन्य ३० सामान्य रूपसे विहारके विषयमें हैं। इनके समुचित अध्ययन एवं संकलनसे मध्यप्रदेशमें जैनधर्म और संस्कृतिके विकासका इतिहास जाननेमें पर्याप्त सहायता मिलती है।

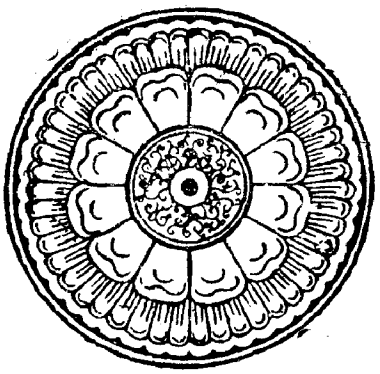

१. जबलपुर और पनागर के मूर्तिलेख हमने स्वयं देखे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org